साहित्य और भारतीय समाज

भारतीय समाज में साहित्य का विशेष महत्व है। सर्वविदित है कि भारतीय समाज में जन्म के समय से ही नवजात का स्वागत सोहरगीत गाकर किया जाता है । यह कार्यक्रम निरन्तर छः दिन तक चलता है।जब बच्चा तनिक समझने–बुझने की स्थिति में आता है,तब मां,दादीमां,नानीमां द्वारा लोरीगीत गाकर हंसाया,दूध–पीलाया,खिलाया,सुलाया और जगाया तक जाता है।इन लोरियों का ऐसा प्रभाव बच्चे पर पड़ता है कि रोता हुआ बच्चा चुप हो जाता है,हंसने लगता है,खेलने लगता है।यहीं से शुरू हो जाती है भारतीय समाज की साहित्यिक पाठशाला।इसी लोरीगीत के प्रारम्भिक साहित्यिक ज्ञान से वह अज्ञान से ज्ञान की ओर बढ़ने लगता है,जो आजीवन भी चलता रहता है। इसी ज्ञान के साथ एक दिन वही नवजात से बड़ा, साधारण से विशिष्ठ से महान तक बन जाता है। भारतीय समाज में साहित्य का दर्शन जन्म से लेकर हर खुशी के मौंकें–तीज त्योहारों ही नही मृत्यु तक के दुखद गीतों में हो जाता है। भारतीय समाज को साहित्यिक ज्ञान से अनेक लाभ हुए है। साहित्य भारतीय सामाजिक जीवन को संस्कारित करता आ रहा है। साहित्यिक ज्ञान पुस्तकें पढ़ने कहने सुनने से तो प्राप्त होता है परन्तु इनसे अधिक लाभ अनुभव से प्राप्त होता है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के अनुसार ज्ञान राशि के संचित कोष का नाम साहित्य है, अर्थात साहित्य और मानव जीवन खासकर भारतीय परिवेश में साहित्य और जीवन का गहरा सम्बन्ध है। साहित्य का आधार जीवन है। साहित्यकार समाज अथवा युग की उपेक्षा नही कर सकता क्योंकि सच्चे साहित्यकार की दृष्टि में साहित्य ही अपने समाज का स्वर और संगीत होता है। देश की आजादी की लड़ाई के दौरान भारतीय समाज और साहित्य का साक्षात्कार दुनिया को हो चुका है।अंग्रेजो को देश छोड़कर भागना पड़ा,इसमें भारतीय समाज और साहित्य की बहुत बड़ी भूमिका रही।साहित्य परिवर्तन के आह्वाहन के साथ मानवजाति को जोड़ता है।इसीलिये भारतीय समाज में साहित्य,समाज का प्रतिबिम्ब माना जाता है। साहित्य अतीत का दर्पण और भावी जीवन का निर्देशक भी है। सच्चा साहित्य कभी पुराना नही होता, ऐसा साहित्य जीवन के शाश्वत मूल्यों को प्रतिष्ठित करता है। वाल्मीकी, कालीदस, रविदास, सूरदास, तुलसीदास एवं आधुनिक युग के कलमकारों की कृतियां आज के सूचनाक्रान्ति एवं व्यावसायिककरण के दौर मे भी आधुनिक समाज का दिशा निर्देशन करने में सक्षम है।

साहित्य के उद्देश्यों को लेकर प्राचीनकाल से भारतीय और पाश्चात्य काव्य–शास्त्री चर्चा करते रहे है। आज भी यह चर्चा अनवरत् जारी है,साहित्य का सामाजिक सरोकार भी होना चाहिये जो सामाजिक परिवर्तन का शंखनाद करें,सामाजिक बुराईयों के तिरस्कार–बहिष्कार का ऐलान करें,मानव से मानव को जोड़ने की बात करें और हाशिशये के आदमी का पक्षधर भी हो। यह चिन्ता और चर्चा भारतीय समाज में आधुनिक साहित्य की उपज कहा जा सकता है जो भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों के उन्मूलन की दृष्टि से जरूरी भी है। भारतीय समाज में यह मान्यता है कि किये का फल इस जन्म में नही तो अगले जन्म में मिलता है । इस विश्वास का प्रभाव भारतीय समाज और साहित्य पर पड़ा है।

प्राचीन भारत में बौद्ध और जैन धर्म का जन्म स्थापित और स्वीकृत परम्पराओं और मान्यताओं के विरोध में हुआ है । अपनी अभिव्यति के लिये संस्कृत को छोड़कर प्राकृत भाषाओं को अपनाने की

प्रवृति भारतीय समाज में मिलती है,जिसे सामाजिक परिवर्तन की दृष्टि से भी देखा जा सकता है। इस विछोह को सामाजिक आन्दोलन का नाम दिया जा सकता है। इसके पूर्व सिद्धिनाथ साहित्य में भी इस आन्दोलन को मुखरित किया गया था। सिद्धों ने प्रचलित धार्मिक रूढ़ियों, अधविश्वासों और सामाजिक असमानता पर अपनी तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त की थी। भारतीय समाज में सबसे निम्न स्तर पर जीने वाली जातियों जिनका आदमी होने तक का सुख छिन लिया गया था के लिये भक्ति के साथ जीवन के अन्य क्षेत्रों में सम्मान और समानता की मांग करना सामाजिक परिवर्तन की दृष्टि से अत्यधिक प्रगतिशील और अग्रगामी शंखनाद था जिसे साहित्य ने ही स्वर प्रदान किया था। वर्तमान में स्वधर्मी जातीय समानता अथवा बहुधर्मी सद्भावना आयेगी अथवा नही यह तो कयास का विषय हो सकता है परन्तु दावे के साथ कहा जा सकता है कि भारतीय समाज में आ रहे परिवर्तन के कारणों को साहित्य ही मुखरित कर रहा है। दिशा दे रहा है,परिवर्तन के स्वर दूर–दूर तक पहुंचा रहा है । आने वाली पीढ़ियों को संस्कारित करने के प्रयास और स्वर की जीवन्ता बनाये रखने में भी अहम् भूमिका निभा रहा है। भारतीय समाज में मूल्य संस्कार के रूप में व्याप्त है। व्यक्ति की वर्तमान स्थिति की व्याख्या उसके पूर्व जन्म के के कर्मो का हवाला देकर की जाती है। ऐसी व्याख्या स्वार्थी सामाजिक शक्तियों का वर्चस्व कहा जा सकता है,जो जातीय असमानता को बढ़ावा है,यदि व्यक्ति इन विचारों पर विश्वास और आस्था रखता है तो यकीनन ऐसी आस्था से दूसरों के कष्टों के प्रति उदासीनता का वातावरण निर्मित होता है जिसकी इजाजत न तो सभ्य समाज देगा और नही सद्साहित्य क्योंकि साहित्य समाज का दर्पण होता है और साहित्यकार समय का पुत्र।

भारतीय समाज और साहित्य को लोक गीतों ने भी संवृद्ध किया है । इसका उल्लेख पूर्व में किया जा चुका है। लोकशब्द का अनुवाद अंग्रेजी के फोक रूप में हुआ है। ऋग्वेद के अनुसार लोक शब्द विराट समाज की ओर संकेत है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नही है बल्कि नगरों या गांवों में फैली हुई समूची जनता है,जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियां नही है। ये लोग नगर में परिस्कृत जीवन के अभ्यस्त होते हैं । परिष्कृत रूचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिये जो भी वस्तुयें आवश्यक होती है,उनको उत्पन्न करते हैं। देश में कई राजनैति परिवर्तन हुए है होते हैं पर लोकगीतों में बदलाव नही हुआ परन्तु राजनैतिक परिवर्तनों का मानवजीवन पर असर दिखाई देने लगता है। लोकगीतों की तटस्थता बनी रहती है। मनुष्य शिक्षित होकर अनेक रूप बदल लेता है परन्तु लोक संस्कृति की गति में विशेष परिवर्तन नही आता। इन लोक गीतों का कथ्य खाना–पीना,रहन–सहन,रीति–रिवाज,परम्परा,रूढ़ियां सामाजिक–पारिवारिक सम्बन्ध,नाते–रिश्ते मान–मनुहार,नोंक–झोंक आदि होता है। सच तो ये है कि लोकगीत भारतीय संस्कृत की पहरेदार हैं,भारतीय समाज और साहित्य को सम्पन्न एवं रूचिकर बनाती है। लोक गीत जन–मन का गीत है जो पीढ़ी दर पीढ़ी विरासत में मिलता रहता है जिससे भारतीय समाज और साहित्य अधिक संवृद्ध हुआ है।

साहित्य,भारतीय समाज में मनुष्यता को पोषित करने की दृष्टि से देखा जाता है,रचा जाता है क्योंकि साहित्य का उद्देश्य,दुर्गति,हीनता,उपेक्षा, से उबरते हुए मानवीय एकता–समता ,सद्भावना और विश्वबन्धुत्व को बढ़ावा भी देना होता है। साहित्य के इसी उद्देश्य ने भारतीय समाज में व्याप्त संकीर्णताओं पर प्रहार किया है और आज का आदमी जाति–धर्म से उपर उठकर मानवीय समानता के पक्ष में खड़े होने लगे है। जाति–तोड़ो तक की ललकार सुनायी देने लगी है। यह ललकार साहित्यिक विचार मंथन की द्योतक है। आज का साहित्यकार भी मात्र स्वप्न एवं कल्पना भी जीना नही चाहता वह यथार्थवादी बनकर मानव–राष्ट्र के साथ विश्व को जोड़ने का इच्छुक है । वह भारतीय समाज को समानतावादी ऐनक से देखकर बुद्ध के सपनों को साकार करना चाहता है। भारतीय समाज और साहित्य को दुनिया के शिखर पर प्रतिष्ठित करना चाहता है। साहित्यकार सोचने लगे है कि मात्र साहित्य सृजन बड़ी बात नही है,समाज को सचेत करना भी दायित्व हैं जो साहित्य और भारतीय समाज के लिये परमावश्यक है। भारतीय समाज और साहित्य को लेकर देश के जनसमुदाय के अध्ययन का प्रयत्न किया गया है और हो भी रहे है परन्तु खेद के साथ कहा जा सकता है कि यह वोट नीति अथवा अच्छा मतदाता बनाने के उद्देश्य से हुए है अथवा हो रहे है परन्तु भारतीय समाज और साहित्यिक उत्थान की दृष्टि से अध्ययन होना अभी बाकी है। हमारा देश आज के इस विज्ञान के युग में जातिभेद की समस्या से घिरा पड़ा है, भारतीय समाज में 75 प्रतिशत से अधिक मनुष्य जातिवाद–भेदभाव के शिकार है, जिसके कारण उनके मन में कुण्ठा घर कर गयी है। जब तक यह कुण्ठा खत्म नही हो जाती तब तक देश की आत्मा सुखी नही हो सकता। इस काम को भारतीय समाज करने का संकल्प ले ले तो साहित्य में इतनी शक्ति है कि वह हर समस्या का समाधान कर सकता है परन्तु भारतीय समाज को ईमानदारी बरतना होगा, सामाजिक, राष्ट्रीय एकता एवं स्वधर्मी समानता के साथ बहुधर्मी सद्भावना को भी विकसित करना होगा । राष्ट्र की अमन,शान्ति एवं एकता के लिये राष्ट्र–धर्म तक को विकसित करना होगा,वर्तमान में यह भारतीय समाज और साहित्य के लिये जरूरी भी हो गया है।

यकीन के साथ यह कहा जा सकता है कि साहित्य की विषय वस्तु समाज है,जैसा समाज और उसका वातावरण होगा वैसा प्रभाव साहित्य पर भी पड़ेगा। साहित्यकार भी उसी समाज में रहते हुए समाज के सुख–दुख रीतिरिवाजों पर–अथवा आपबीती अनुभवों से उपजे विचार और कल्पनशीलता को याथार्थ की तुला पर रखते हुए कलमबद्ध कर समाज के भले के लिये दर्पण दिखाने का काम करता है। सामाजिक परिस्थितियां साहित्यकार को प्रभावित करती है यह प्रभाव प्रेमचन्द ने कफन के घीसू और माधो के माध्यम से दिखाने का भरपूर प्रयास किया है। घीसू और माधो अनपढ़ थे परन्तु परलोक की मान्यता के सम्बन्ध में दोनों का दृष्टिकोण कितना समान है,घीसू कहता है कफन लगाने से क्या मिलता है है,आखिर जल ही जा है ? कुछ बहू के साथ न जाएगा । माधो कहता है दुनिया का दस्तूर है नही तो लोग बामनों को हजारों रूप्या क्यों देते। कौन देखता है परलोक में मिलता है या नही । प्रेमचन्द ने कफन के इन पात्रों के माध्यम से भारतीय समाज को कितना बड़ा संदेश दिया

है।यह संदेश भारतीय समाज में सामाजिक–समानता मानवीय एकता के बढ़ावा के साथ अंधभक्ति एवं रूढ़िवादी कर्मकाण्डों से बचने–बचाने की सोच पैदा किया है।

साहित्य का समाज पर क्रान्तिकारी प्रभाव पड़ता है।साहित्यकार समाज का प्रतिनिधित्व करता है और समाज को विचार प्रदान करता है। समाज जब किसी बुराई की चपेट में आता है,साहित्यकार दूर करने का अथक प्रयास करता है। साहित्यकारों ने सदा ही समाज को राह दिखाने का काम किया है। साहित्य और समाज दोनों अलग–अलग मुद्दे होकर भी एक है। साहित्य समाज का सेवक है,दोनों का उत्थान –पतन भी होता है।समाज का पक्ष कमजोर होता है तो साहित्य में दिखने लगता है यदि साहित्य का पक्ष कमजोर होता है तो वह समाज में दिखने लगता है । वर्तमान में युवा पीढ़ी एवं समाज का साहित्य से दूरी का प्रभाव स्पष्ट नजर आने लगा है,साहित्य और साहित्यकार उपेक्षा के शिकार हो रहे है।समाज में नैतिक पतन और दूसरी कई बुराईयां घर करने लगी है परन्तु साहित्यकार अनभिज्ञ नही है वे अपने दायित्व पर खरे उतर रहे है जिसका परिणाम है रोज रोज आती नई कृतियां और साहित्यिक सभायें गोष्ठियां ।साहित्य का उद्देश्य ही समाज का हित साधते हुए और उन्नति के मार्ग पर ले जाना होता है।

भारतीय समाज और साहित्य का गहरा सम्बन्ध हैं और दोनों एक दूसरे के पूरक है। समाज शरीर है तो साहित्य आत्मा। साहित्य मानव मस्तिष्क से उत्पन्न होता है। साहित्य मनुष्य को मनुष्यता प्रदान करता है। मनुष्य न तो समाज से अलग हो सकता है और न साहित्य से। मनुष्य का पालन–पोषण,शिक्षा–दीक्षा तथा जीवन निर्वहन भी समाज में ही होता है। व्यक्ति सामाजिक प्राणी बनकर अनेक अनुभव ग्रहण करता है,ज बवह इन अनुभवों को शब्दों के माध्यम से व्यक्त करता है तो साहित्य का रूप बन जाता है। शब्दों की यही अभिव्यक्ति आदमी को श्रेष्ठ एवं साहित्यकार बना देती है। अन्तोगत्वा,कहा जा सकता है कि साहित्य और भारतीय समाज एक सिक्के के दो पहलू है।साहित्य के बिना राष्ट्र की सभ्यता और संस्कृति निर्जीव है।साहित्यकार का कर्तव्य बनता है कि वह ऐसे साहित्य का सृजन करे जो राष्ट्रीय एकता,मानवीय समानता,विश्व–बन्धुत्व के सदभाव के साथ हाशिये के आदमी के जीवन को उपर उठाने में सक्षम हो। विश्वपटल पर भी भारतीय समाज और साहित्य का प्रतिनिधित्व करने में भी सक्षम बना रहे। यह भारतीय जनसमुदाय और साहित्यकारों का नैतिक दायित्व भी बनता है ताकि भारतीय समाज और साहित्य जगत का मार्गदर्शक बना रहे।नन्दलाल भारती /04.01.2012